क्यों करें प्रयोग?

विज्ञान की कक्षा में गतिविधियों के पक्ष में कुछ और कारण

उमा सुधीर

हार्डी (हृदय कांत दीवान) ने *संदर्भ* (अंक-4, पृ. 15-17) में 'क्यों करें प्रयोग' शीर्षक से एक लेख लिखा था। हमने उस लेख का उपयोग कई कार्यशालाओं में किया है और सहभागियों से उस लेख में वर्णित प्रयोग करवाया भी है। उस लेख और उस प्रयोग पर काफी जीवन्त चर्चाएँ भी हुई हैं। सात्यकी भट्टाचार्य और अभिषेक धर ने 'क्यों चढ़ा पानी ऊपर' (*संदर्भ* अंक-5, पृ. 38-44) में उस प्रयोग को लेकर काफी खोजबीन की है – प्रयोग यह है कि एक जलती हुई मोमबत्ती को पानी भरी एक तश्तरी में रखकर बीकर से ढँकने पर क्या होता है।

लेकिन मुझे इस प्रयोग के बारे में बात नहीं करनी है, वर्तमान लेख में मैं हार्डी द्वारा अपने लेख में उठाए गए मुद्दों पर चर्चा को आगे बढ़ाते हुए विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में

गतिविधियों के तौर पर दिए प्रयोगों की प्रकृति की छानबीन करना चाहूँगी। मैं इस बारे में चर्चा करूँगी कि हमें विज्ञान की कक्षा में गतिविधियों की क्या ज़रूरत है (और क्यों शिक्षक इसके लिए राज़ी नहीं होते) और यदि हम विज्ञान शिक्षा को संजीदगी से लेते हैं तो हमें किस तरह की गतिविधियों की ज़रूरत है।

फिलहाल पाठ्यपुस्तकों में किस तरह के प्रयोग पाए जाते हैं? काफी समय से, जैसा कि हार्डी ने कहा है, हर प्रयोग के बाद विस्तार में बताया जाता है कि अपेक्षित अवलोकन क्या होंगे और उनसे क्या निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए। लगता है कि ऐसा दो कारणों से किया जाता है – पहला कि पाठ्यपुस्तकों के लेखकों की अपेक्षा नहीं होती कि इन प्रयोगों को वास्तव में किया जाएगा। इसलिए यदि आगे की चर्चा के लिए अवलोकन ज़रूरी हैं, तो हर हाल में ये उपलब्ध कराने होंगे। दूसरा, खुदा न ख्वास्ता, यदि कोई शिक्षक वास्तव में ये प्रयोग करवाने का हौसला दिखाए, तो लेखकों को उन पर और छात्रों पर यह विश्वास नहीं होता कि वे 'सही' अवलोकन करके अपेक्षित निष्कर्ष तक पहुँच पाएँगे (इस पर आगे और बात करेंगे)।

यह दूसरा कारण शायद सम्भव है – वैज्ञानिक सिद्धान्तों का तकाज़ा होता है कि हम मात्र उन अवलोकनों पर ध्यान केन्द्रित करें जो अन्वेषणाधीन

चित्र-1: गिलास-मोमबत्ती का प्रयोग: *एक शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान कुछ शिक्षकों का तर्क था कि यदि मोमबत्ती बुझने के बाद गिलास की हवा गरम होकर फैलने से पानी ऊपर चढ़ता है, तो हम गिलास को बाहर से गरम करके देखते हैं। क्या गिलास में पानी और ऊपर चढ़ता है? कुछ शिक्षकों ने ऐसा करके भी देखा। आप भी करके देखिए और अपने अवलोकन संदर्भ टीम को भेजिए।*

परिघटना के लिए प्रासंगिक हैं और कोई निष्पक्ष अवलोकनकर्ता शायद शिक्षक (या पाठ्यपुस्तक लेखक) के लिए इतने और ऐसे तथ्य उपलब्ध करा दे कि उन्हें सन्तोषजनक ढंग से सम्भालना मुश्किल हो। एक वरिष्ठ शिक्षाविद ने मुझे बताया था कि मोमबत्ती का उपरोक्त प्रयोग बच्चों के एक समूह में करने पर 100 से ज़्यादा अलग-अलग अवलोकन आए थे।

पाठ्यपुस्तकों में गतिविधियों का अपर्याप्त विवरण

यदि कोई अनुभवहीन व्यक्ति पाठ्यपुस्तक में दी गई गतिविधियाँ करवाने की कोशिश करे, तो वे प्राय: मुश्किल में फँस जाएँगे क्योंकि निर्देश काफी चलताऊ होते हैं। इसके अलावा, इबारत के साथ दिए गए चित्र (यदि हों तो) अक्सर गलत होते हैं क्योंकि जिस चित्रकार से ये चित्र बनाने को कहा जाता है, उसे बिलकुल भी पता नहीं होता कि चित्र में क्या दर्शाना है और उसे उपकरणों का भी अता-पता नहीं होता। मुझे एक पाठ्यपुस्तक देखकर काफी अचम्भा हुआ था – उसमें एक चित्र में हाथ में एक परख नली दिखाना थी लेकिन जो चीज़ हाथ में पकड़ी दर्शाई गई थी, वह 500 मि.ली. के नपनाघट के बराबर थी।

इन निर्देशों के संक्षिप्त होने का कारण यह हो सकता है कि इस बात की कोई गम्भीर अपेक्षा नहीं होती कि कोई इन प्रयोगों को करने की कोशिश करेगा/करेगी। यह भी हो सकता है कि पुस्तक के लेखकों ने इस सामग्री को किसी ऐसे व्यक्ति के साथ आज़माया ही न हो जो इस सामग्री का उपयोग करने वाले हैं। पाठ्यपुस्तकें अक्सर 'विशेषज्ञों' द्वारा लिखी जाती हैं जिन्हें शिक्षकों और जिन स्कूलों में वे शिक्षक काम करते हैं, वहाँ की परिस्थिति का कोई अनुभव नहीं होता और यह भी अन्दाज़ नहीं होता कि वहाँ कोई सन्दर्भ पुस्तकें नहीं होंगी जिनकी मदद से शिक्षक किसी बात की जाँच कर सकें। दरअसल, शिक्षक के पास ले-देकर एक पाठ्यपुस्तक और बहुत हुआ तो निर्देशिका होती है। आजकल हालत थोड़ी बेहतर हुई है क्योंकि शिक्षक अपने स्मार्ट फोन की मदद से ऑनलाइन तलाश कर सकते हैं। लेकिन विभिन्न वेबसाइट्स पर सामग्री की गुणवत्ता को परखने का कोई तरीका न होने की स्थिति में वे भाग्यशाली होंगे यदि उन्हें हर बार कोई अच्छा स्रोत मिल जाए।

लेकिन चन्द प्रासंगिक कारकों/परिवर्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना एक ज़रूरी कुशलता है – अधिकांश सिद्धान्त आदर्शीकरण की प्रक्रिया से प्राप्त होते हैं और इस प्रक्रिया को सीखना-समझना होता है।

अलबत्ता, मैं उस प्रक्रिया के बारे में बात नहीं करने जा रही हूँ जिसके ज़रिए नियम व सिद्धान्त हासिल किए जाते हैं। मेरी चिन्ता का कारण तो यह है कि अधिकांश शिक्षक कक्षा में किसी भी तरह की गतिविधि करवाने के लिए तैयार नहीं होते, उन गतिविधियों की तो बात ही जाने दें जिनके बारे में मेरा मत है कि वे छात्रों के लिए विज्ञान की प्रकृति को समझने के लिए ज़रूरी हैं। और इस तैयारीहीनता का प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश अभिजात्य स्कूलों तक में प्रैक्टिकल्स 'रिकॉर्ड बुक' से अधिक कुछ नहीं होते। और अधिकांश अन्य निजी स्कूलों और सरकारी

चित्र-2: *विज्ञान के प्रयोगों को करने के लिए कुछ बुनियादी कौशल और दक्षताओं की ज़रूरत होती है जिसे शिक्षक आसानी-से हासिल कर लेते हैं। इसलिए विज्ञान के प्रयोग करवाना किसी भी शिक्षक के लिए सहज है।*

स्कूलों में तो ठीक-ठाक प्रयोगशाला अथवा न्यूनतम उपकरण भी नहीं होते। साधारण कॉलेजों में तो आप अपेक्षित प्रयोग किए बगैर भी स्नातक उपाधि प्राप्त कर सकते हैं। और जो छात्र 'अच्छे' कॉलेजों में जाते हैं जहाँ सारे प्रयोग गम्भीरता से किए जाते हैं, वे अक्सर शिक्षक नहीं बनते।

कार्यशालाओं में मेरा सम्पर्क जिन शिक्षकों से हुआ है, उन्होंने स्कूली शिक्षा के दौरान एक भी प्रयोग नहीं किया था, और कई शिक्षकों ने तो रस्मी प्रायोगिक परीक्षा (जो अपने-आप में एक साइड बिज़नेस है) के अलावा प्रयोगशाला में कदम रखे बिना ही सफलतापूर्वक स्नातक उपाधि पूरी कर ली थी। लिहाज़ा, उन्हें पता नहीं होता कि प्रयोग कैसे किए जाएँ, हालाँकि पाठ्यपुस्तक में उसका विवरण दिया गया होता है (वैसे बॉक्स देखिए कि कई बार प्रयोगों का विवरण भी ठीक तरह से नहीं दिया जाता है)। इस मामले में मेरे अनुभव हास्यास्पद से लेकर त्रासद तक रहे हैं। यह इस बात पर निर्भर है कि उस समय मैं कितनी मायूस या खुश हूँ।

उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति (इंजीनियरिंग स्नातक) को 30, 50 और 70 से.मी. लम्बाइयों के दोलकों का दोलन काल निकालने को कहा गया। अब यदि मैं उन सारी त्रुटियों को अनदेखा भी कर दूँ जो उसने दोलक की लम्बाई निकालने में की

थीं, तो भी मुझे उसके तरीके में विचित्र खामियाँ नज़र आईं - जिनमें सबसे प्रमुख थी, दोलन शुरू करने से लेकर दोलन पूरी तरह रुक जाने तक का समय नापना। मैं सोचती रही कि उसे इतना समय क्यों लग रहा है और देखने गई तो समझ में आया। इसकी वजह से उसका यह क्रान्तिकारी निष्कर्ष तो कभी उभर ही नहीं पाया कि दोलन काल शुरुआती विस्थापन पर निर्भर करता है क्योंकि खोजबीन की यह धारा वहाँ रोक दी गई थी।

ऐसे शिक्षक, सबसे बढ़िया इच्छाशक्ति के बावजूद (अधिकांश शिक्षक अपने छात्रों के लिए बढ़िया-से-बढ़िया काम करना चाहते हैं) इस स्थिति में नहीं होते कि अपनी कक्षा में गतिविधि आधारित सत्र का संचालन कर सकें। पहले कभी प्रयोग न करने की वजह से वे खुद चीज़ें आज़माने को लेकर थोड़े भयभीत होते हैं, कक्षा में करवाने की बात तो दूर की है।

शिक्षकों के लिए चिन्ता का एक और स्रोत यह होता है कि यदि उन्होंने बच्चों से गतिविधि करवाई या किसी गतिविधि का प्रदर्शन भी कर दिया, तो बच्चे इतने सवाल पूछने लगेंगे, जिनके जवाब देने में विशेषज्ञों के भी पसीने छूट जाते हैं। चूँकि अधिकांश शिक्षकों ने दस-बीस प्रश्नों का रट्टा मारकर उपाधियाँ प्राप्त की हैं, इसलिए उनके पास ऐसे सवालों का सामना करने के लिए ज़रूरी विषय की समझ नहीं होती।

हमने जो कुछेक कार्यशालाएँ आयोजित की हैं, उनमें हमें शिक्षकों के ज्ञान व अनुभव में दो प्रमुख खामियों का सामना करना पड़ा है – उनके पास विषयवस्तु (सिद्धान्त) का उपयुक्त ज्ञान नहीं होता, और उन्होंने शायद ही कभी कोई प्रयोग किया है। लिहाज़ा, शिक्षण विधि में एक बहुत अलग तरीके की बात करते हुए, शिक्षकों को यह समझाना भी मुश्किल होता है कि छात्रों से प्रयोग करवाना कितना ज़रूरी है। अक्सर उनकी पहली आपत्ति यह होती है कि इसमें समय बहुत लगेगा और वे सिलेबस पूरा नहीं कर पाएँगे। लेकिन सत्र के अन्त में जब हम पूछते हैं कि क्या उन्हें प्रयोग करने में मज़ा आया और क्या उन्होंने कुछ नया सीखा, तो वे सहमत होते हैं। लेकिन थोड़ी झिझक भी होती है क्योंकि अब भी प्रमुख चिन्ता सिलेबस पूरा करने की होती है, सीखने-सिखाने की गुणवत्ता जाए भाड़ में।

अलबत्ता, हमें कई ऐसे शिक्षक मिले हैं जो इस बात को लेकर बहुत उत्साहित थे कि उन्हें छात्रों को विज्ञान की कक्षा में प्रेरित करने का एक साधन मिल गया है। ये शिक्षक आगे चलकर अपनी कक्षा को गतिविधि-उन्मुखी बनाने के लिए खूब मेहनत करते हैं और ऐसा करते हुए मज़ा भी लेते हैं। लेकिन यह एक

लम्बी प्रक्रिया है और इसके लिए कई कार्यशालाओं और कक्षा में मदद की भी दरकार होती है। यह समय, हुनर और संसाधनों का एक दीर्घावधि निवेश है जिसे प्रशासनिक मशीनरी समझ नहीं पाती, क्योंकि वह तो बच्चों में सीखने की किसी भी कमी के सन्दर्भ में थेगले लगाकर काम चलाना चाहती है।

इस लेख के मुख्य विषय से थोड़ा हटकर, अपर्याप्तता के इस एहसास के साथ जुड़ी होती है सर्वज्ञाता 'गुरु' की एक छवि जिसे शिक्षक को जीना पड़ता है। अपनी कार्यशालाओं में हम शिक्षकों से कहते रहते हैं कि छात्रों से कहना गलत नहीं है कि आप सारे उत्तर नहीं जानते और सुझा सकते हैं कि आप दोनों (छात्र और शिक्षक) मिलकर जवाब खोजने की कोशिश करेंगे। इन सत्रों के दौरान मैंने अक्सर ऐसे कथन व्यक्त किए हैं –

- मुझे पता नहीं, लेकिन मैं पता करके बता सकती हूँ।
- यह सवाल मेरे ज़ेहन में कभी आया ही नहीं, इसलिए मुझे इसके बारे में सोचना होगा।
- वाह, क्या बढ़िया सवाल है, चलिए बाकी सत्र में इसकी आगे पड़ताल करते हैं। (यह आखरी वाला वक्तव्य बदकिस्मती से उतना नहीं कहा जाता, जितने कि बाकी दो)

मैंने इस बारे में सोचा है कि क्या यह सुनकर शिक्षकों को ऐसा नहीं लगता होगा कि उनका पाला एक नाकारा अध्यापक से पड़ा है। बहरहाल, मैं उम्मीद करती हूँ कि उनमें से कुछ शिक्षक तो ऐसी बातें अपने छात्रों से कहने लगे होंगे।

प्रयोग के हुनर से विज्ञान की समझ

अच्छी तरह पढ़ाने के लिए जिस अवधारणात्मक समझ की ज़रूरत होती है, उसे छोड़ दें तो भी विभिन्न प्रयोग करने का हुनर कई सारे मानक प्रयोगों को मार्गदर्शन के अन्तर्गत कई बार करने से ही हासिल होता है। एक ही प्रयोग को बार-बार दोहराना, विभिन्न उपकरणों का उपयोग करना सीखना, और उपकरणों में त्रुटि की गुंजाइश को सराहना उन्हें यह आत्मसात करने में मदद देगा कि किस तरह की सावधानियों की ज़रूरत होती है और अलग-अलग प्रयोग कितने दृढ़ होते हैं और हर मामले में आपको कितना सतर्क रहना होगा। मैं अपनी पीएच. डी. के दौरान विभिन्न कार्बनिक पदार्थों की मिलीग्राम मात्रा का संश्लेषण किया करती थी। उस अनुभव से निकलकर मैंने *एकलव्य* से जुड़े एक वरिष्ठ प्राध्यापक से 10 प्रतिशत कॉस्टिक सोडा और 1 प्रतिशत कॉपर सल्फेट का घोल (जिनका उपयोग खाद्य पदार्थों में प्रोटीन परीक्षण के लिए होता है) बनाने के बारे में पूछा। चूँकि हमारे पास तोलने का कोई साधन नहीं था,

तो उन्होंने बताया कि दोनों घोल के 100-100 मि.ली. बनाने के लिए सोडियम हायड्रॉक्साइड चम्मच भर लेने से काम चल जाएगा और 1 प्रतिशत घोल के लिए एक चुटकी भर कॉपर सल्फेट लगेगा। कई कार्यशालाओं में भाग लेने के बाद ही मुझमें ज़रूरी सान्द्रता का घोल बनाने का आत्मविश्वास पैदा हुआ और यह समझ में आया कि कब मोटा-मोटा अन्दाज़ काफी होता है जबकि कुछ परिस्थितियों में ज़्यादा ध्यान रखना पड़ता है और तराज़ू का उपयोग करना होता है।

निगरानी के तहत समूहों में प्रयोग करना और साथ में प्रत्येक समूह में अवलोकनों को लेकर खुली चर्चा दो कारणों से ज़रूरी है। उनकी बात मैं कुछ समय में करूँगी। हम शिक्षकों के साथ इसी तरह से काम करते हैं और शिक्षण विधि को लेकर अघोषित सुझाव यह होता है कि वे कक्षा में अपने छात्रों के साथ ऐसा ही करेंगे। अब इस बात पर आते हैं कि कई समूहों द्वारा किए गए एक ही प्रयोग के अवलोकनों को आपस में साझा करना क्यों ज़रूरी है। ज़ाहिर है, जब हम अलग-अलग समूहों के अवलोकनों को साथ रखेंगे तो विविधता होगी। और इन विविधताओं को सम्बोधित करना, नीचे बताए कारणों के चलते महत्वपूर्ण है।

चित्र-3: *ध्वनि के परावर्तन के नियम की पड़ताल करते हुए कक्षा आठ के बच्चे। प्रयोग का सेटअप और टोली में कौन क्या करेगा, यह सब बच्चों ने ही तय किया था। किनवट (ज़िला नांदेड़, महाराष्ट्र) की एक आश्रमशाला में विज्ञान कक्षा का दृश्य।*

पहला, जब भिन्नताएँ दिखती हैं, तो यह प्रयोग पद्धति की ज़्यादा गहराई में पड़ताल करने का और यह समझने का मौका होता है कि प्रयोग को कितनी सावधानी से किया गया था। प्रयोग शुरू करने से पहले जो निर्देश दिए जाते हैं, वे कई बार समूहों द्वारा ठीक से समझे नहीं जाते क्योंकि प्रयोग करने का अत्यन्त उत्साह होता है। एक प्रयोग कर लेने के बाद, खामियों पर चर्चा करने से सावधानियों के बारे में जितनी सतर्कता आती है, वह पद्धति और सावधानियों को बार-बार दोहराकर भी नहीं आती। इसके आधार पर प्रयोग को ज़्यादा सावधानी से दोहराया जाना चाहिए। आम तौर पर इसके बाद अवलोकनों में तालमेल बेहतर हो जाता है लेकिन विविधता तो फिर भी रहती है।

और इससे हम दूसरे, और ज़्यादा महत्वपूर्ण कारण पर पहुँचते हैं कि क्यों पूरी कक्षा को हरेक समूह द्वारा प्राप्त अवलोकनों को साझा करना चाहिए। कारण यह है कि कोई भी प्रयोग कितनी ही निष्ठा और सावधानी से किया जाए, विविधता देता ही है - मानवीय त्रुटि की वजह से, उपकरणों की सटीकता की वजह से या बेतरतीब विविधता भी हो सकती है। इस सब की चर्चा करने से न सिर्फ समूह को समझ में आएगा कि क्यों उनके अवलोकन अपेक्षित अवलोकनों से मेल नहीं खाते बल्कि इससे एक और बात रेखांकित होगी, जिसके बारे में पाठ्यपुस्तकें बात नहीं करतीं - कि विज्ञान अस्थायी ज्ञान है, एक रेंज होती है जिसके भीतर कोई सिद्धान्त सटीक पूर्वानुमान देता है, और इस ज्ञान की सीमाएँ पता करने का काम लगातार जारी रहता है। यह पहलू एक स्वतंत्र लेख का हकदार है और मैं फिलहाल इसमें और विस्तार में नहीं जाऊँगी।

हुनर और अभ्यास

जब मैं यह याद करती हूँ कि मेरे शिक्षकों ने मुझे प्रयोगशाला की छोटी-छोटी बातों का प्रशिक्षण देने में कितनी मेहनत की थी - हर छोटी-से-छोटी चीज़ सिखाई थी - कि ब्यूरेट के स्टॉप कॉक को कैसे चलाना है, ग्राफ में स्मूथ (smooth) वक्र कैसे खींचते हैं। उन्होंने मेरे द्वारा बनाई गई हर बेढंगी स्लाइड को खारिज कर दिया था क्योंकि स्लाइड जितनी मोटाई की होनी चाहिए, उससे तीन गुना मोटी थी। तो मुझे आजकल के छात्रों की कहानियाँ सुनकर हैरत होती है। मुझे याद है कि एक स्नातक छात्र ने मुझे बताया था कि उसके शिक्षक ने उसे कहा था कि उन्हें अनुमापन के तीन पाठ्यांक बताने हैं। पहला वाला पाठ्यांक थोड़ा अलग हो सकता है लेकिन अगले दो सही होने चाहिए और एकदम समान (कॉनकरेंट) होने चाहिए।

मैं इतनी हक्का-बक्का थी कि

समझ नहीं आया कि अनुमापन के इस संस्करण को कहाँ से उधेड़ना शुरू करूँ। मैं कल्पना कर सकती हूँ कि कोई कुशल पेशेवर सारे अज्ञात अनुमापनों में तीन पाठ्यांकों में सारे सही मान निकाल लेगी (मैं स्कूलों और कॉलेजों में किए जाने वाले अनुमापनों को अज्ञात अनुमापन नहीं कहूँगी क्योंकि उनमें सान्द्रताओं को इस तरह समायोजित किया जाता है कि प्रायोगिक रूप से आप जो आयतन खर्च करें, वह मानक घोल के लगभग बराबर रहे लेकिन जब हम किसी अज्ञात राशि का मान ज्ञात करने की कोशिश करते हैं तो ऐसा नहीं होता)। यदि उस व्यक्ति को हर बार सुसंगत पाठ्यांक मिलते हैं, तो इसका मतलब है कि पहला अनुमापन ही उसने शुरू से बूँद-बूँद करके किया है जिससे सही मान प्राप्त हुआ। फिर दूसरी बार भी वही पाठ्यांक मिलने से इसकी पुष्टि हो जाएगी। तीन पाठ्यांकों से मान को ज्ञात करने का मतलब है कि पहला पाठ्यांक थोड़ा अधिक होगा क्योंकि पहली बार में अन्तिम बिन्दु शायद थोड़ी देर में देखा गया होगा। लेकिन जब इसे दोहराया जाएगा तो आपको मोटे तौर पर अन्दाज़ होगा कि अन्तिम बिन्दु क्या है, इसलिए आप इस मान से 1-2 मि.ली. पहले ही धीरे-धीरे अनुमापन करने लगेंगे ताकि एकदम सही अन्तिम बिन्दु पता कर सकें। तीसरे अनुमापन में वही पाठ्यांक मिलने पर इसकी पुष्टि हो जाएगी।

यदि कोई सिर्फ दो पाठ्यांक रिपोर्ट कर रहा है और दोनों एक-से हैं, तो मैं मानकर चलूँगी कि वह व्यक्ति पहले अनुमापन को अति सावधानीपूर्वक करके अपना समय बरबाद कर रहा है ताकि एकदम सही मान मिल जाए और फिर एक और अनुमापन करके उसकी पुष्टि कर ले। चूँकि समय भी एक संसाधन है, उसे बरबाद नहीं करना चाहिए। हम एक कुशल रसायनज्ञ में यह गुण देखना नहीं चाहते।

लेकिन किसी नौसिखिए, जो उपकरण सम्भालना सीख ही रहा है, से यह अपेक्षा ठीक नहीं लगती कि वह विशेषज्ञ की तरह पहला ठीक-ठाक पाठ्यांक प्राप्त करके फिर दो एक-से पाठ्यांक रिपोर्ट करे। मेरी अपेक्षा तो होगी कि चार-पाँच प्रयासों के बाद जाकर दो एक-से पाठ्यांक मिलेंगे। और यह स्थिति काफी अनुभव के बाद बदलेगी जब वह व्यक्ति दस्तक दे रहे अन्तिम बिन्दु को भाँप पाएगा।

सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए पिपेट की ऐसी डिज़ाइन विकसित हुई जिसमें आपको मुँह से खींचकर घोल नहीं भरना पड़ता। इसका मतलब है कि अनुमापन करते समय मैंने जो कई घूँट सोडियम हायड्रॉक्साइड या हायड्रोक्लोरिक

अम्ल निगला था, आज वह रासायनिक प्रयोगों का अपरिहार्य हिस्सा नहीं है।

प्रासंगिक गतिविधियों की ज़रूरत

बहरहाल, उस बात पर लौटती हूँ जो मेरा लक्ष्य है। यदि शिक्षक कक्षा में गतिविधियाँ करवाना चाहें तो उनको अनुभव की आवश्यकता है, जो फिलहाल उनके पास नहीं है। लेकिन खुद गतिविधियों का क्या? क्या वे विषय के लिए प्रासंगिक होती हैं? या फिर वे सिर्फ इसलिए शामिल कर दी जाती हैं ताकि पाठ्यपुस्तक गतिविधि-आधारित होने का स्वांग कर सके? क्या ये गतिविधियाँ सही होती हैं या गलत धारणाओं पर टिकी होती हैं? हार्डी ने जिस प्रयोग की चर्चा की थी, वह काफी आलोचना के चलते पाठ्यपुस्तकों में से बाहर हो चुका है और मैं यह दावा नहीं करूँगी कि पाठ्यपुस्तकों में आज शामिल सारी गतिविधियाँ प्रासंगिक हैं। लेकिन मैं एक-एक उदाहरण ऐसी गतिविधियों का देना चाहूँगी जो या तो सजावटी हैं जिन्हें वास्तव में करना नहीं है और दूसरी ऐसी जो सरासर गलत हैं।

पहला उदाहरण एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा-9 की विज्ञान की वर्तमान पाठ्यपुस्तक (प्रथम प्रकाशन 2006) में देखा जा सकता है। ध्वनि के अध्याय में एक गतिविधि कथित रूप से दर्शाती है कि ध्वनि निर्वात में गमन नहीं करती। मैं यह दावा तो नहीं कर रही हूँ कि जिस रूप में यह गतिविधि वर्णित है, उस रूप में काम नहीं करेगी। दरअसल, कई वीडियो आसानी-से उपलब्ध हैं जिनमें यही प्रयोग दर्शाया गया है। मेरी दिक्कत है कि यह अपेक्षा करना हास्यास्पद है कि किसी स्कूल में निर्वात पम्प उपलब्ध होगा। यथार्थ के प्रति एक रियायत यह की गई है कि इस गतिविधि को क्रमसंख्या नहीं दी गई है। लेकिन पाठ की इबारत से ऐसा लगता है कि छात्र स्वतंत्र रूप से यह प्रयोग कर सकते हैं।

और एक गलत गतिविधि का उदाहरण हमें महाराष्ट्र की कक्षा-7 की पाठ्यपुस्तक के 'प्राकृतिक संसाधनों के गुणधर्म' नामक अध्याय में देखने को मिलता है। इसमें एक छड़ी के दो सिरों पर बँधे गुब्बारों की तुलना का प्रयोग दिया गया है। एक गुब्बारे में हवा भरी है जबकि दूसरा खाली है। इस प्रयोग से यह दर्शाने की अपेक्षा की जाती है कि हवा में 'संहति और वज़न' होते हैं। (जी हाँ, पाठ्यपुस्तक में ये शब्द मोटे हर्फों में छपे हैं)। यदि इसी तर्क को आगे बढ़ाकर, हम यही प्रयोग एक गुब्बारे में हवा की बजाय हायड्रोजन भरकर करें तो हम ऋणात्मक संहति और वज़न वाले पदार्थ की खोज कर लेंगे। यह प्रयोग भी किसी समय मिडिल स्कूल की अधिकांश पाठ्यपुस्तकों की शोभा हुआ करता था, लेकिन अब कमोबेश चलन से बाहर हो गया है, और इस बात का कारण भी स्पष्ट

चित्र-4: *कक्षा सातवीं की किताब में दिया गया गुब्बारे वाला चित्र जो हवा में संहति होने की बात को समझाने की चेष्टा करता है।*

रूप से समझा नहीं गया है कि क्यों हवा से भरा गुब्बारा थोड़ा भारी होता है; और तो और, यह अन्तर इतना कम है कि सन्तुलन बिन्दु पर टिकी कोई छड़ी शायद ही इसे भाँप सकेगी।

निष्कर्ष दिए जाएँ या नहीं?

इस सवाल पर आते हैं कि क्या प्रयोग के विवरण में अपेक्षित अवलोकन और निष्कर्ष शामिल किए जाने चाहिए। मैं पूरी तरह इसके खिलाफ नहीं हूँ, और न ही मुझे लगता है कि यह जानने से प्रयोग करने का उत्साह कम हो जाएगा कि उसमें क्या अपेक्षा है। मैं जिन शिक्षकों को जानती हूँ, वे सब हायड्रोजन के गुणधर्मों को बयान कर सकते हैं। लेकिन इसके बावजूद जब हायड्रोजन को 'पॉप' की ध्वनि के साथ जलाने की बात आती है तो सब जोश में आ जाते हैं। हमें करना यह होगा कि गतिविधियों को शिक्षक व छात्र, दोनों के लिए इतनी दिलचस्प बनाएँ कि उनमें कौतूहल पैदा हो जाए। और मुझे उन प्रयोगों को दोहराने के फायदे भी दिखते हैं जिनके परिणाम सदियों से पता हैं। गुरुत्वीय त्वरण (g) का मान हमें पता ही है, लेकिन जब हम दोलक की मदद से इसका मान पता करने की कोशिश करते हैं तो हमें मापन के अपने हुनर को तराशने का मौका मिलता है। प्रैक्टिकल पाठ्यक्रम में शामिल कई अन्य प्रयोग हमें कई ज़रूरी हुनर सिखाते हैं जिनका उपयोग हम बाद में नए अन्वेषण के लिए कर सकते हैं। बहरहाल, मैं कई लोगों की इस बात से सहमत हूँ कि पाठ्यपुस्तक में हर गतिविधि के अपेक्षित अवलोकन/निष्कर्ष प्रदान करना, सीखने की प्रक्रिया में इन गतिविधियों की भूमिका के बारे में गलत सन्देश दे सकता है और जिज्ञासा को मार भी सकता है। इसका एक समाधान यह हो सकता है कि शिक्षक एक गहन उन्मुखीकरण से गुज़रें और यह जान लें कि सारी गतिविधियाँ कैसे करनी हैं और उन्हें सम्भावित अवलोकन भी पता हों, ताकि वे बच्चों का मार्गदर्शन कर

सकें और इस जानकारी को पाठ्यपुस्तक में शामिल न करना पड़े। मैं सिर्फ दो पाठ्यपुस्तकों के बारे में जानती हूँ जिनमें यह तरीका अपनाया गया है। अधिकांश पाठ्यपुस्तकें सब कुछ बता देने और रहस्य से बचने का 'सुरक्षित' तरीका अपनाती हैं।

गतिविधियों का परास

प्रायोगिक कौशल सीखना जबकि उनकी ज़रूरत कभी न पड़े, वैसा ही है जैसे बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए वर्णमाला और शब्द सिखाए जाएँ लेकिन मात्राएँ न सिखाई जाएँ। मेरा मत है कि विज्ञान कक्षा में हमें चार तरह की गतिविधियाँ करवानी चाहिए।

1. ऐसे प्रयोग जिनमें छात्रों को जाने-माने प्रयोग दोहराने का मौका मिले और उन्हें अपेक्षित निष्कर्ष पता हों ताकि वे हुनर और प्रयोगशाला तकनीकें सीख सकें। यहाँ छात्रों को यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि वे कोई मौलिक अन्वेषण नहीं करने जा रहे हैं बल्कि इन प्रायोगिक परिणामों को दोहराना व उनकी पुष्टि करना न सिर्फ वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान की मज़बूती को सुदृढ़ करता है बल्कि अपने प्रायोगिक कौशल को तराशने का और यह सीखने का मौका भी देता है कि व्यवस्थित रूप से अन्वेषण कैसे करते हैं। ऐसे 'सत्यापन' प्रयोग कुछ ऐतिहासिक प्रयोग भी हो सकते हैं जिन्होंने हमारे ज्ञान में नाटकीय ढंग से वृद्धि की है।

2. ऐसे प्रयोग जिनमें छात्रों को अपने हुनर को थोड़ा टटोलने का मौका मिले। जैसे, दिए गए घोलों को लाल व नीले लिटमस की मदद से अम्लीय, क्षारीय व उदासीन में वर्गीकृत करने के प्रयोग के बाद, वे कुछ ज्ञात अम्लीय और क्षारीय घोलों के साथ जाँच-पड़ताल करके पता कर सकते हैं कि कौन-से फूल अच्छे अम्ल-क्षार सूचक हो सकते हैं। वे यह भी पता कर सकते हैं कि और कौन-सी चीज़ें सूचक बन सकती हैं। मुझे याद है जब किसी ने बताया था कि पेम्फलेट छापने में इस्तेमाल किया जाने वाला पीला कागज़ भी अम्ल-क्षार का सूचक हो सकता है। हमें बताया जाता है कि जामुन और लाल पत्तागोभी भी pH के अनुसार रंग बदलते हैं। इनके अलावा गन्ध-आधारित सूचक भी होते हैं। पता नहीं और किन-किन चीज़ों को सूचक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

3. कुछ जाँच-पड़ताल निर्देशित खोज के रूप में भी हो सकती हैं जहाँ छात्र मिलकर यह सोच सकते हैं कि उनके द्वारा अध्ययन के लिए चुनी गई किसी परिघटना को कौन-से कारक प्रभावित करते हैं। शिक्षक इनमें वे कारक जोड़ सकते हैं जो छूट गए हों ताकि परिघटना के अध्ययन के लिए ज़रूरी सारे कंट्रोल प्रयोग भी किए जा सकें। उदाहरण के लिए, जंग लगने का अध्ययन कर रहे प्राथमिक कक्षा के

छात्रों का मार्गदर्शन करते शिक्षक ने देखा कि वे जंग लगने में हवा (ऑक्सीजन) की भूमिका से अनभिज्ञ हैं। इसलिए जो प्रयोग उन्होंने शुरू किए थे, वे पूरी समझ बनाने की दृष्टि से नाकाफी थे। ऐसे मामलों में यदि शिक्षक यह विचार जोड़े कि हवा (विभिन्न गैसें) भी कई अभिक्रियाओं में एक अभिकारक है या एक उत्पाद है, तो इससे छात्रों को इस आम वैकल्पिक धारणा से उबरने में मदद मिलेगी कि गैसें 'कुछ नहीं' हैं। यह धारणा इसलिए बनती है क्योंकि अधिकांश गैसें रंगहीन और गन्धहीन होती हैं।

4. और इसके बाद पूरी तरह से खुले अन्वेषण आते हैं जिनमें आपको बिलकुल पता नहीं होता कि जवाब क्या है (शिक्षक भी छात्र के बराबर अनभिज्ञ होते हैं)। दरअसल, आप जवाब खोज रहे होते हैं और खोज का रास्ता भी ढूँढ़ रहे होते हैं, जिसमें वे हुनर काम आते हैं जो आपने सीखे हैं। इस मद में वे सारे प्रोजेक्ट आएँगे जो छात्रों से उभरे हैं जो उनके किसी सवाल का जवाब पाने के लिए किए जाते हैं। ये सवाल उनके अपने हो सकते हैं या उनके समुदाय को परेशान कर रहे सवाल हो सकते हैं। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण परासिया के छात्रों द्वारा किया गया पानी परीक्षण प्रोजेक्ट था क्योंकि पानी की गुणवत्ता वहाँ एक बड़ी समस्या थी। ऐसे खुले प्रोजेक्ट छात्रों को घटित होते हुए विज्ञान से रूबरू करवाएँगे और उन्हें यह समझने का भी मौका देंगे कि किसी परिकल्पना की जाँच कैसे करते हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि इनसे छात्र किसी भी क्षेत्र में यथास्थिति को स्वीकार करने की बजाय बदलने के बारे में भी सोचेंगे।

एक और ज़रूरी कदम

लेकिन विज्ञान कक्षा में गतिविधियों की भूमिका को लेकर सारे हो-हल्ले के बावजूद, हम इससे वास्तव में क्या अपेक्षा कर सकते हैं? मैंने यह तो सूचीबद्ध कर दिया है कि किस तरह की गतिविधियाँ/प्रयोग किए जाने चाहिए, लेकिन इनसे मैं क्या परिणाम मिलने की उम्मीद करती हूँ? जब पहले-पहल गतिविधि-आधारित विज्ञान कक्षा की वकालत की गई थी, तो अपेक्षा यह थी कि छात्र 'बाल वैज्ञानिक' बनेंगे, जो सावधानीपूर्वक पाठ्यक्रम में शामिल प्रयोग करके अपने अवलोकनों के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों तक पहुँचेंगे। शुरुआत में मैंने कहा था कि शायद पाठ्यपुस्तकों के लेखकों को नहीं लगता कि प्रयोग करने के बाद छात्र सही निष्कर्ष तक पहुँच पाएँगे और इसीलिए वे सब कुछ परोस देते हैं। और वास्तव में जब विभिन्न गतिविधि-आधारित पाठ्यक्रमों (यूके के नफील्ड और यूएस में फिज़िकल साइन्सिज़ करिकुलम स्टडी, बायोलॉजिकल

साइन्सिज़ करिकुलम स्टडी और केम स्टडी) का अध्ययन किया गया तो पता चला कि निश्चित रूप से छात्र वह विज्ञान नहीं सीख रहे हैं, जिसे सीखने की उनसे उम्मीद की जा रही थी।

शुरुआत में तो इसका दोष शिक्षकों को तथा अपर्याप्त प्रशिक्षण की खामियों को दिया गया और सम्भवत: यह सोचा गया कि शिक्षक अपना काम ठीक से नहीं कर रहे हैं। भारत में हम जिन चीज़ों की कल्पना भी नहीं कर सकते, ऐसे संसाधन इन कार्यक्रमों में झोंके गए ताकि ये काम करें। लेकिन ज़्यादा लाभ नहीं हुआ। अन्तत: डेविड आसुबेल ने इस सन्दर्भ में सीखने वाले की भूमिका की ओर इशारा किया – कि हर सीखने वाला कक्षा में इस बाबत कुछ विचार लेकर आता है कि यह दुनिया कैसे काम करती है। ये विचार दैनिक जीवन के तमाम अनुभवों से उभरे होते हैं – खेलकूद, घर में मदद करना, अपने आसपास की दुनिया को टटोलना। और चीज़ों को धकेलने के अनगिनत अनुभवों के बाद एक-दो प्रयोग करके या निहायत अविश्वसनीय दलीलें सुनकर, वे यह तो नहीं मानने वाले हैं कि 'कोई वस्तु एकरूप गति अथवा विराम की अपनी अवस्था में तब तक बनी रहेगी जब तक कि कोई बाहरी बल न लगाया जाए।' वैसे भी इन प्रयोगों और दलीलों का रोज़मर्रा जीवन से कुछ लेना-देना नज़र नहीं आता।

इसी प्रकार से, जब उन्हें बताया जाता है कि पृथ्वी एक गोला है जो अपनी धुरी पर घूमता है और सूरज के चक्कर काटता है, तो उनकी उन तमाम प्रमाणों तक पहुँच नहीं होती जिनके आधार पर लोग इन विचारों तक पहुँचे थे। बच्चे जो अवधारणाएँ लेकर आते हैं, उन्हें वैकल्पिक अवधारणाएँ, मासूम अवधारणाएँ या थोड़ा फूहड़ शैली में गलतफहमियाँ कहा जाता है। और ये काफी सशक्त होती हैं और कई वयस्कों में भी देखी जा सकती हैं (क्योंकि उन्हें कभी चुनौती नहीं दी गई थी और स्कूल में उन्होंने जो विज्ञान सीखा था, उसका उनके दैनिक जीवन में कभी उपयोग नहीं हुआ)।

यदि हम इस स्थिति को गैर-जज़्बाती ढंग से देखें तो मिडिल और हाई स्कूल के छात्रों से यह अपेक्षा थोड़ी ज़्यादा ही लगती है कि वे गैलीलियो, न्यूटन, डाल्टन या डारविन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तक पहुँच जाएँ। इन सिद्धान्तों की समझ तक पहुँचने का रास्ता कोई सरल रेखा नहीं है – एक-दो प्रयोग किए और सामूहिक 'आहा!' का क्षण आ गया। दरअसल, छात्रों को कई संकेतों की ज़रूरत होती है और साथ ही यह भी कि वे अपने विचार व्यक्त कर पाएँ और उनके सामने ऐसी

स्थितियाँ प्रस्तुत की जाएँ जिनमें उनकी सहज अपेक्षाएँ पूरी नहीं होंगी। यानी, उनका सामना ऐसी कई स्थितियों से करवाना होगा जहाँ उनकी मनचाही मान्यताएँ नाकाम हो जाती हैं और फिर उनके सामने वह सिद्धान्त प्रस्तुत किया जाए जो चीज़ों की सन्तोषप्रद व्याख्या कर देता है।

उदाहरण के लिए, *एकलव्य* की 'बाल वैज्ञानिक' में विद्युत के अध्याय में छात्र एक प्रयोग करते हैं जिसमें वे एक सेल के धन छोर से शुरू करके तार के माध्यम से बल्ब तक और फिर वापिस सेल के ऋण छोर तक विद्युत के पथ का अनुसरण करते हैं – जब बल्ब जल रहा हो। फिर वे यह देखते हैं कि जिन परिपथों में रास्ता टूटा होता है, उनमें बल्ब नहीं जलता। इस आधार पर वे इस सरल और प्रत्यक्ष निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि बल्ब को जलने के लिए विद्युत का रास्ता, यानी विद्युत परिपथ, सेल के एक छोर से दूसरे छोर तक पूर्ण होना चाहिए। यह प्रयोग कई परिपथ संयोजनों के साथ किया जाता है और बल्ब को सावधानीपूर्वक तोड़कर यह भी देखा जाता है कि परिपथ बल्ब के अन्दर भी निरन्तर होता है।

इसके बाद उन्हें निम्नांकित परिपथ दिखाया जाता है और यह बताने को कहा जाता है कि बल्ब जलेगा या नहीं। और मैं जितनी भी कार्यशालाओं में उपस्थित रही हूँ, निरपवाद रूप से हरेक में, छात्रों और

चित्र-5: *दिए गए परिपथ को ध्यान से देखिए और बताइए कि बल्ब जलेगा या नहीं। अनुमान लगाने के बाद आप सेल, तार आदि के साथ वास्तविक परिपथ बनाकर देखिए कि अनुमान सही था या नहीं।*

शिक्षकों, दोनों का विचार था कि बल्ब जलता रहेगा। जब उनसे खुद परिपथ बनाकर जाँच करने को कहा जाता है, तो उनके सामने एक संज्ञानात्मक टकराव पैदा हो जाता है, और उन्हें इस नए अवलोकन की व्याख्या के लिए अपने सिद्धान्त में परिवर्तन करना पड़ता है। इस तरह, कदम-दर-कदम परिपथ में धारा को प्रभावित करने वाले कारकों की समझ बनाई जाती है। और उम्मीद है कि इससे विद्युत की एक बेहतर समझ बनेगी बजाय किसी ऐसे पारम्परिक अध्याय के जिसमें प्रतिरोध, विभवान्तर जैसे शब्दों की बौछार की जाती है। अपने बारे में कहूँ, तो विद्युत के बारे में मेरी जो भी बुनियादी समझ है, वह बाल वैज्ञानिक अध्यायों पर ही टिकी है। इससे पहले मैं इस विषय का सिर-पैर नहीं समझ पाती थी।

चित्र-6: *शिक्षक प्रशिक्षणों में जब सिद्धान्तों और अवधारणाओं पर खुलकर चर्चा हो जाती है तब प्रयोगों के डिज़ाइन पाठ्यपुस्तकों से हटकर, कुछ नए-नए-से दिखने लगते हैं। महाराष्ट्र के आश्रमशाला शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान 'हवा के दबाव' पर चर्चा के बाद साधारण पॉलिथीन, स्ट्रॉ पाइप और धागे की मदद से बने एयर जैक से एक शिक्षक ने दो साइंस किट बॉक्स उठाकर दिखाए।*

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि दोनों इन्तहाएँ वैज्ञानिक सिद्धान्तों की गहरी व दीर्घावधि समझ नहीं बना पाएँगी। यदि उन्हें बगैर किसी अनुभव के सिर्फ सिद्धान्त प्रदान किए गए तो ये मात्र ऐसी चीज़ें (और काफी हद तक अर्थहीन चीज़ें) बनकर रह जाएँगे जिन्हें परीक्षाएँ पास करने के लिए और वयस्कों को खुश करने के लिए सीखना है। लेकिन अन्ततः जीवन में जो कुछ चलता है, उससे इनका कोई सरोकार नहीं होगा। किन्तु अपने आप में गतिविधियाँ भी उन्हें सिद्धान्तों तक लेकर नहीं जाएँगी। इसके लिए छोटे-छोटे समूहों में चर्चाएँ करवानी होंगी और फिर खुली बातचीत करनी होगी। और यह सब शिक्षक के मार्गदर्शन में होगा जिसमें वे अपने द्वारा प्रस्तावित हर व्याख्या के निहितार्थों को परखेंगे।

उमा सुधीर: *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी फोटो: माधव केलकर।

आभार: अरविंद सरदाना द्वारा इस लेख के शुरुआती ड्राफ्ट पर दिए गए फीडबैक से इस लेख को बोधगम्य बनाने में बहुत मदद मिली।